राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल प्रथम अपील संख्या 490/2011

शांति लाल जैन पुत्र स्वर्गीय श्री सोभाग मल वैद उम्र 55 वर्ष, निवासी 111-ए, सूर्य नगर, गोपाल पुरा बाई पास, जयपुर

---- अपीलार्थी-वादी

बनाम

1. राजस्थान सरकार भारत स्काउट एवं गाइड, अपने प्रधान, राजस्थान मुख्यालय, जवाहर लाल नेहरू मार्ग, बजाज नगर, जयपुर के माध्यम से।
2. सरकार मुख्य आयुक्त, राजस्थान सरकार भारत स्काउट एवं गाइड, राजस्थान मुख्यालय, जवाहर लाल नेहरू मार्ग, बजाज नगर, जयपुर।

---- प्रत्यर्थी

अपीलार्थी की ओर से : श्री राजेंद्र वैश्य

प्रत्यर्थी की ओर से : श्री अरुण शर्मा

श्री सुबोध शाह के लिए

माननीय श्रीमान न्यायमूर्ति सुदेश बंसल

<u>निर्णय</u>

निर्णय सुरक्षित करने की तारीख : 30/09/2022

निर्णय उच्चारित करने की तारीख : 02/11/2022

<u>न्यायालय द्वारा</u>:

<u>रिपोर्टेबल</u>

1. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत दायर त्वरित प्रथम अपील में, अपीलार्थी-वादी राजस्थान सरकार भारत स्काउट एंड गाइड (आर.एस.बी.एस.जी.) का एक अपराधी कर्मचारी था, जिसे दिनांक 01.12.2018 को आरोप-पत्र दिया गया था, और राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 (इसके बाद "सीसीए नियम") के नियम 16 के तहत जांच करने के बाद, उन्हें आदेश दिनांक 14.07.2009

द्वारा सेवा से हटा दिया गया, जिसे कर्मचारी ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी थी लेकिन उसकी विभागीय अपील भी दिनांक 12.11.2009 के आदेश के तहत खारिज कर दी गई, इसके बाद, उन्होंने दोनों आदेशों को चुनौती देते हुए और पिछले वेतन, वरिष्ठता और सेवा में निरंतरता के सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में अपनी बहाली की मांग के लिए वर्तमान सिविल मुकदमा दायर किया। उनके सिविल वाद संख्या 06/2010 को अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 5, जयपुर शहर, जयपुर द्वारा दिनांक 11.05.2011 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया है और इसके विरूद्ध उन्होंने तत्काल प्रथम अपील दायर की है।

2. वर्तमान मामले के तथ्य रिकार्ड से निकाले गए हैं और जो तत्काल प्रथम अपील के निर्णय के लिए आवश्यक हैं, वे इस प्रकार हैं:-

2.1 सिविल वाद 18.12.2009 को शुरू किया गया था, जिसमें अन्य बातों के अलावा यह आरोप लगाया गया था कि वादी को 03.12.1980 को सहायक संगठन आयुक्त (एओसी) के रूप में नियुक्त किया गया था और उसने दो दशकों से अधिक समय तक सेवा की थी, और उसका पूरा सेवा कैरियर विचाराधीन को छोड़कर बिना किसी प्रतिकूल वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (एसीआर) या कोई आरोप-पत्र के साफ और बेदाग रहा। उनके विरूद्ध आठ आरोप लगाते हुए दिनांक 01.12.2008 को एक आरोप-पत्र दिया गया था। उन्होंने प्रत्येक आरोप का विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया। उत्तर दाखिल करने से पहले, उन्होंने बार-बार दस्तावेजों की मांग की, लेकिन उन्हें कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया गया और ऐसे दस्तावेजों के अभाव में, अपीलार्थी के पास कोई बचाव नहीं था और बचाव का उनका अधिकार खत्म हो गया था। जांच अधिकारी के समक्ष दलील दी गई कि वादी ने अपने बचाव के लिए दस्तावेज मंगाने का अनुरोध किया लेकिन कोई दस्तावेज नहीं मंगाया गया। दस्तावेजों का स्वीकारोक्ति खंडन नहीं किया गया और बिना किसी साक्ष्य या गवाह के विभाग द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों को वादी के विरूद्ध सिद्ध कर दिया गया।

2.2 यह आरोप लगाया गया कि सीसीए नियमों के नियम 16 का पूर्ण उल्लंघन करते हुए जांच की गई और सेवा से हटाने का दंड आदेश मनमाने ढंग से, अवैध रूप से और दुर्भावनापूर्ण तरीके से पारित किया गया है। यह तर्क दिया गया कि उसके बाद, वादी को सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत दस्तावेज उपलब्ध कराए गए और उसने अपने

बचाव के समर्थन में संपूर्ण दस्तावेजों के साथ अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर करके दिनांक 14.07.2009 के बर्खास्तगी आदेश को चुनौती दी, लेकिन अपीलीय प्राधिकारी ने दस्तावेजों पर विचार किए बिना और पूर्ण और उचित सुनवाई किए बिना दिनांक 12.11.2009 के आदेश के माध्यम से, अपील को खारिज कर दिया, इसलिए, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित अपील की अस्वीकृति आदेश भी सीसीए नियमों के नियम 30(2) का उल्लंघन है।

2.3 वादी ने कहा कि बर्खास्तगी आदेश दिनांक 14.7.2009 और अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध हैं और ये दुर्भावनापूर्ण हैं और सीसीए नियमों के नियम 16 और 30 की अनिवार्य प्रक्रिया का उल्लंघन है और निरस्त किए जाने योग्य हैं। वादी ने यह भी दलील दी कि उसके विरूद्ध लगाए गए आरोप पुराने, बासी और देर से लगाए गए हैं। दिसंबर 1998 से पहले जीएफ और एआर नियम लागू नहीं थे, फिर भी जीएफ और एआर नियमों का पालन न करने और बिना साक्ष्य के आरोप सिद्ध कर दिए गए। यह तर्क दिया गया कि वादी को मनमाने ढंग से और अवैध रूप से सेवा से हटा दिया गया है, इसलिए, उसे तुरंत बहाल किया जाए और उसे सेवा में जारी रखते हुए पिछला वेतन, वरिष्ठता और सभी लाभ सहित सभी परिणामी लाभ दिए जाएं।

2.4 नोटिस जारी करने पर, प्रत्यर्थीगण ने प्रारंभिक आपत्ति जताते हुए लिखित बयान दायर किया कि यह मुकदमा सिविल कोर्ट के समक्ष चलने योग्य नहीं है वादी के रूप में अपने किसी भी नागरिक अधिकार का दावा नहीं किया है, और विभागीय जांच करने के बाद पारित आदेशों को केवल राजस्थान सिविल सेवा अपीलीय अधिकरण के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। यह कहा गया कि वादी 14-7-2009 तक सहायक संगठन आयुक्त के पद पर कार्यरत नहीं था, क्योंकि विभागीय जांच के लंबित रहने के दौरान, वह दिनांक 3-10-2007 के आदेश के तहत निलंबित था और उसकी पोस्टिंग मुख्यालय जयपुर में थी। दिनांक 14-7-2009 एवं 12-11-2009 के आक्षेपित आदेशों को पारित करना स्वीकार किया गया। यह कहा गया कि वादी को जांच के लंबित रहने के दौरान सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया था। जब वादी ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थता व्यक्त की तो उसकी अपील पर निर्णय कर दिया गया। मुकदमा खारिज करने की प्रार्थना की गई।

2.5 दोनों पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों के अनुसार, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने निम्नलिखित मुद्दे तय किए:

(I) क्या वादपत्र के पैरा संख्या 1 एवं 2 की सामग्री के अनुसार वादी 14-7-2009 तक सहायक संगठन आयुक्त के पद पर था, जब आदेश संख्या 4243 दिनांक 14-7-2009 द्वारा उसे आक्षेपित आदेश द्वारा सेवा से हटा दिया गया था?

(II) क्या वादपत्र के पैरा संख्या 3 की सामग्री के अनुसार बर्खास्तगी आदेश की पुष्टि करने वाला आक्षेपित अपीलीय आदेश संख्या 9780 दिनांक 12-11-2009 अवैध, सरसरी और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है?

(III) क्या लिखित बयान के पैरा संख्या 1 और 2 की सामग्री के अनुसार मुकदमा अधिकार क्षेत्र से परे होने के कारण सुनवाई योग्य नहीं है?

(IV) राहत?

2.6 साक्ष्य में, वादी- शांति लाल जैन ने खुद को पीडब्लू-1 के रूप में प्रस्तुत किया और दस्तावेज (प्रदर्श-1 से प्रदर्श-54) प्रदर्शित किए। प्रत्यर्थीगण की ओर से, गवाह-विनोद कुमार शर्मा डीडब्ल्यू-1 के रूप में उपस्थित हुए और दस्तावेजों (प्रदर्श-ए1 से प्रदर्श-ए6) का प्रदर्श किया।

2.7 विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सिविल कोर्ट के क्षेत्राधिकार से संबंधित मुद्दे संख्या 3 को प्रारंभिक मुद्दे के रूप में तय किया और माना कि सीसीए नियमों का उल्लंघन करने वाले बर्खास्तगी आदेश और अपील अस्वीकृति आदेश को चुनौती देने के संबंध में, क्षेत्राधिकार राजस्थान सिविल सेवा अपीलीय अधिकरण के समक्ष आता है। फिर भी, दुर्भावनापूर्ण और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन करने के आधार पर आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने के संबंध में, सिविल न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है। मुद्दे संख्या 1 और 2 पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया गया, बल्कि दुर्भावना और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन की जांच के सीमित दायरे में विचार किया गया और निर्णय लिया गया। अंत में, दोनों मुद्दों पर वादी के विरूद्ध निर्णय किया गया है और मुकदमे को दिनांक 11.05.2011 के निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया है।

3. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया, आक्षेपित निर्णय और अभिलेख

का अवलोकन किया गया।

4. शुरुआत में, यह देखा जा सकता है कि पहली अपील को हमेशा सिविल मुकदमे की निरंतरता के रूप में माना जाता है और वस्तुतः पहली अपील सिविल मुकदमे की दोबारा सुनवाई होती है और पूरा मामला पुनर्विचार के लिए खोल दिया जाता है।

संतोष हजारी बनाम पुरूषोत्तम तिवारी [(2001) 3 एससीसी 179] के मामले में पैरा 15 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रथम अपील के दायरे और प्रथम अपीलीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित शब्दों में समझाया::

"15....अपीलीय न्यायालय के पास ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों को उलटने या उसकी पुष्टि करने का अधिकार क्षेत्र है और जब तक यह कानून द्वारा प्रतिबंधित न हो प्रथम अपील पार्टियों का एक मूल्यवान अधिकार है। इसमें पूरा मामला तथ्य और कानून दोनों के प्रश्नों पर दोबारा सुनवाई के लिए खुलता है। इसलिए, अपीलीय न्यायालय के निर्णय को उसके दिमाग के सचेत अनुप्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए, और अपीलीय न्यायालय के निर्णय के लिए पार्टियों द्वारा प्रस्तुत किए गए और उठाए गए सभी मुद्दों के साथ उत्पन्न होने वाले सभी मुद्दों पर कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्षों को रिकॉर्ड करना चाहिए।... .....तथ्य के निष्कर्ष को उलटते समय अपीलीय न्यायालय को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए तर्क के करीब आना चाहिए और फिर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने स्वयं के कारण बताने चाहिए। इससे आगे की अपील पर सुनवाई करने वाली न्यायालय संतुष्ट हो जाएगी कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उससे अपेक्षित कर्तव्य का निर्वहन किया है।

एच.के.एन. स्वामी बनाम इरशाद बसिथ [(2005) 10 एससीसी 243], के एक अन्य मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 3 में प्रथम अपीलीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के संबंध में सिद्धांतों को फिर से दोहराया।:

"3. प्रथम अपील का निर्णय तथ्यों के साथ-साथ कानून के आधार पर भी होना चाहिए। पहली अपील में पार्टियों को कानून के प्रश्नों के साथ-साथ तथ्यों पर भी सुने जाने का अधिकार है और पहली अपीलीय न्यायालय को सभी मुद्दों पर खुद विचार करना होगा और कारण बताकर मामले का निर्णय करना होगा। दुर्भाग्य से,

वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने तथ्यों या कानून पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में बैठते हुए यह उच्च न्यायालय का कर्तव्य था कि वह स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों के साक्ष्यों से निपटे।"

माननीय उच्चतम न्यायालय, **बी.वी. नागेश बनाम एच वी. श्रीनिवास मूर्ति [(2010)13 एससीसी 530]** के मामले में और आगे **ए.एम. संगप्पा बनाम सांगोंडेप्पा [(2013) 14 स्केल 384]** के मामले में, ने उपरोक्त सिद्धांतों को दोहराया है।

5. जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह न्यायालय प्रथम अपील के क्षेत्राधिकार के दायरे को ध्यान में रखते हुए, अब वर्तमान अपील को मुद्दे के अनुसार निम्नानुसार निपटा रहा है:

<u>मुद्दा क्रमांक 3:-</u>

6. यह मुद्दा बर्खास्तगी आदेश और अपील अस्वीकृति आदेश को चुनौती देने वाले वर्तमान सिविल मुकदमे की सुनवाई, सुनवाई और निर्णय करने के सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने, हालांकि इस मुद्दे को वादी के पक्ष में तय किया है, फिर भी सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को केवल तभी सीमित कर दिया है, जब वे दुर्भावनापूर्ण हों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन से ग्रस्त हों। सीसीए नियमों के अनिवार्य प्रावधानों का पालन किए बिना पारित किए गए आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने के संबंध में, ट्रायल कोर्ट ने निष्कर्ष निकाला है कि सीसीए नियमों के उल्लंघन में, आक्षेपित आदेशों के संबंध में, राजस्थान सिविल सेवा अपीलीय अधिकरण का अधिकार क्षेत्र है और सिविल कोर्ट का नहीं।

7. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में गलती की है कि सीसीए नियमों का उल्लंघन करने वाले आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने के उद्देश्य से, वादी को राजस्थान सिविल सेवा अपीलीय अधिकरण में जाना चाहिए था। तथ्य की बात यह है कि वादी आर.एस.बी.एस.जी. का कर्मचारी था और प्रत्यर्थी (आर.एस.बी.एस.जी.) न तो एक सरकार है और न ही इसका सहायक प्राधिकारी है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत सरकार की श्रेणी में नहीं आता है। वास्तव में, आर.एस.बी.एस.जी. सरकारी निकाय नहीं है, बल्कि सोसायटी अधिनियम के तहत पंजीकृत एक सोसायटी है और इसलिए वादी भी सरकारी सेवक नहीं है। बहस के दौरान प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता

ने राजस्थान सरकार भारत स्काउट और गाइड की इस स्थिति पर विवाद नहीं किया है कि यह एक सरकार नहीं है।

श्रवण कुमार शर्मा बनाम राजस्थान सरकार [(2005) 1 डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 349], के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की एकलपीठ पहले ही यह व्यवस्था दे चुकी है कि राजस्थान सरकार भारत स्काउट और गाइड भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत न तो एक सरकार है और न ही एक प्राधिकरण है, और ऐसे निकाय के विरूद्ध रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

8. राजस्थान सिविल सेवा अपीलीय अधिकरण की स्थापना राजस्थान सिविल सेवा (सेवा मामले अपीलीय अधिकरण) अधिनियम, 1976 के तहत की गई है और केवल सरकारी कर्मचारी ही अपीलीय अधिकरण जा सकते हैं। अपीलीय अधिकरण केवल सिविल सेवकों के मामले की सुनवाई करता है। मौजूदा मामले में, न तो वादी सरकारी सेवक है और न ही प्रत्यर्थी सरकार या उसका प्राधिकारी है, इसलिए, वादी के पास केवल एक उपाय है कि वह आक्षेपित आदेशों के सीसीए के नियमों के उल्लंघनकारी होने के कारण उसे चुनौती देने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करने के संबंध में सिविल न्यायालय और विद्वान ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों के समक्ष ही जाएं, जो कि गलत और टिकाऊ नहीं है।

9. **रामेन्द्र किशोर विश्वास बनाम त्रिपुरा सरकार [(1999) 1 एससीटी 295]** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि सिविल कोर्ट के पास सीसीए नियमों के तहत मामलों का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र है।

10. इसलिए, यह न्यायालय मुद्दा संख्या 3 को पूरी तरह से वादी के पक्ष में और प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध निर्णय देता है, यह मानते हुए कि सेवा से बर्खास्तगी और अपीलीय आदेश के आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने वाला वर्तमान सिविल मुकदमा सिविल न्यायालय के समक्ष विचारणीय है और सिविल न्यायालय इस बात की भी जांच कर सकता है कि क्या विवादित आदेश सीसीए नियमों का उल्लंघन करते हुए, साथ ही दुर्भावनापूर्ण विचार करते हुए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किए गए हैं। मुद्दा संख्या 3 के निष्कर्षों को तदनुसार संशोधित किया गया है।

<u>मुद्दे संख्या 1 और 2:-</u>

11. इन दोनों मुद्दों में निर्धारण के लिए मूल रूप से दो बिंदु शामिल हैं:

(i) वादी को सेवा से बर्खास्त करने का आक्षेपित आदेश दिनांक 14.07.2009 एवं अपीलीय आदेश दिनांक 12.11.2009 कानूनन टिकाऊ है अथवा नहीं?

(ii) दिनांक 14.7.2009 को सेवा से निष्कासन आदेश पारित करते समय क्या वादी को राजस्थान सरकार भारत स्काउट एवं गाइड में सहायक संगठन आयुक्त के पद पर माना जायेगा अथवा नहीं?

12. जहां तक मुद्दा संख्या 1 का प्रश्न है, वादी के विरूद्ध लगाए गए प्रत्येक आरोप से निपटने से पहले, यह न्यायालय उन आधारों पर विचार कर रहा है, जिनके आधार पर वादी ने आरोप लगाया है कि सीसीए नियमों का पूर्ण उल्लंघन करते हुए विवादित आदेश पारित किए गए हैं।

13. इसमें कोई विवाद नहीं है कि आरोप-पत्र, पूछताछ और वादी को सजा राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 (इसके बाद इसे सीसीए नियम कहा जाएगा) के तहत किया गया था। दिनांक 14.7.2009 के आदेश द्वारा वादी को सेवा से हटा दिया गया है, जो एक बड़ा दंड है। सीसीए नियमों के नियम 16 के तहत बड़ा जुर्माना लगाने की प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है।

उप-नियम (1) में ऐसे किसी आदेश की परिकल्पना नहीं की गई है कि नियम 14 के खंड (iv) से (vii) में निर्दिष्ट दंड लगाने को नियम 16 के तहत प्रदान किए गए तरीके से की गई जांच के इतर पारित किया जाएगा। उप-नियम (2) में परिकल्पना की गई है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी उन आरोपों के आधार पर निश्चित आरोप तय करेगा, जिन पर जांच प्रस्तावित है। आरोपों के विवरण के साथ ऐसे आरोपों के बारे में कर्मचारी को लिखित रूप में सूचित किया जाएगा, और कर्मचारी को एक लिखित बयान प्रस्तुत करना होगा, जिसमें यह दर्शाया जाएगा कि क्या वह आरोपों को स्वीकार करता है, या यदि नहीं, तो उसका स्पष्टीकरण या बचाव क्या है और क्या कर्मचारी ऐसा चाहता है कि उसे व्यक्तिगत रूप से सुना जाए। उप-नियम (3) में कहा गया है कि कर्मचारी को अपना बचाव तैयार करने के उद्देश्य से ऐसे आधिकारिक रिकॉर्ड का निरीक्षण करने और उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी जो प्रासंगिक है। यदि कर्मचारी आरोपों को स्वीकार नहीं करता है और बचाव में अपना लिखित बयान प्रस्तुत करता है तो उप-नियम (4) में जांच प्राधिकारी की नियुक्ति के बारे में बताया गया है। उप-नियम (4 क) में उस स्थिति के बारे में बताया

गया है जहां कर्मचारी आरोप के लेख को स्वीकार नहीं करता है या बचाव का कोई लिखित बयान प्रस्तुत नहीं करता है। उप-नियम (5) में जांच प्राधिकारी के समक्ष आरोपों के समर्थन में मामला प्रस्तुत करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा किसी भी व्यक्ति के नामांकन की परिकल्पना की गई है। उप-नियम (6) (क) में कहा गया है कि जहां कर्मचारी ने आरोपों के लिए दोषी नहीं होने की दलील दी है, जांच प्राधिकारी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी से दस दिनों के भीतर गवाहों और दस्तावेजों की सूची जमा करने के लिए कहेगा, जो साथ ही कर्मचारी को उसकी एक प्रति भी भेजेगा। अपराधी कर्मचारी, अभियोजन पक्ष के गवाहों और दस्तावेजों की सूची प्राप्त होने के दस दिनों के भीतर, अपने बचाव के लिए आवश्यक दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत करेगा। फिर जांच प्राधिकारी दोनों पक्षों के दस्तावेज़ों को तलब करेगा और पक्षों से दस्तावेज़ों को स्वीकार करने और अस्वीकार करने के लिए कहेगा। इसके बाद, जांच अधिकारी दोनों पक्षों को अवसर देते हुए, यथा आवश्यक साक्ष्यों को बुलाएगा। जांच प्राधिकारी पक्षों को मुख्य रूप से परीक्षण और जिरह/पुनः परीक्षण का अवसर देगा। किसी भी गवाह और दस्तावेज को बुलाने से इनकार करने की स्थिति में, जांच प्राधिकारी लिखित में कारण दर्ज करेगा। दलीलें सुनने का अवसर दोनों पक्षों को दिया जाएगा। इस नियम के साथ एक विशिष्ट "नोट" जोड़ा गया है जिसमें परिकल्पना की गई है कि यदि सरकारी कर्मचारी गवाहों के बयानों और उप नियम (6) (क) में निर्दिष्ट सूची में उल्लिखित की प्रतियों की आपूर्ति के लिए मौखिक या लिखित रूप से मांग करे जांच प्राधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से उसे ऐसी प्रतियां यथाशीघ्र और किसी भी मामले में गवाहों की ओर से परीक्षा शुरू होने से तीन दिन पहले उपलब्ध कराएगा। इस उप-नियम में यह भी प्रावधान है कि जांच प्राधिकारी, दोषी कर्मचारी द्वारा दस्तावेजों की खोज या प्राप्त के लिए नोटिस प्राप्त होने पर, उन्हें या उनकी प्रतियों को उस प्राधिकारी को अग्रेषित करेगा, जिसकी अभिरक्षा या प्राधिकार में उक्त दस्तावेज रखे गए हैं। जांच प्राधिकारी, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, अप्रासंगिक दस्तावेजों को मांगने से इनकार कर सकता है। यह भी प्रावधान किया गया है कि मांग प्राप्त होने पर, दस्तावेजों की सुरक्षा रखने वाले प्रत्येक प्राधिकारी को उन्हें जांच प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। उप-नियम (6)(क) में जांच प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट किया गया है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को सूची में शामिल नहीं किए गए साक्ष्य प्रस्तुत करने या नए साक्ष्य मांगने की अनुमति दी जाए, लेकिन साथ ही दोषी कर्मचारी को

नए साक्ष्य के बावजूद अवसर भी दिया जाएगा। साक्ष्य में किसी भी कमी को पूरा करने की अनुमति नहीं दी जाएगी या नहीं बुलाया जाएगा। उप-नियम (6) (ख) में नियम 14 में निर्दिष्ट दंड लगाने के लिए अधिकारियों की शक्तियों के बारे में बताया गया है। उप-नियम (7) में कहा गया है कि जांच प्राधिकारी प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्षों को एक साथ दर्ज करने के बाद जांच की रिपोर्ट तैयार करेगा और उसके कारणों उल्लेख करेगा। उप-नियम (8) पूछताछ के रिकॉर्ड के बारे में है। उप-नियम (10) में कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच रिपोर्ट की प्रति दोषी कर्मचारी को भेजेगा, जिसे यदि वह चाहे तो जमा करना होगा। उप-नियम (10 क) में कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यदि किसी आरोप के बारे में जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों से असहमत है, ऐसी असहमति के लिए अपने स्वयं के कारणों को दर्ज करेगा और उसे कर्मचारी को उसके उत्तर के लिए भेजा जाएगा। उप-नियम (10ख) में कहा गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी उप-नियम (11) और (11क) के तहत आगे बढ़ने से पहले दोषी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तरों पर विचार करेगा, उसके बाद उप-नियम (11) और (11क) अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जुर्माना लगाने के बारे में हैं और उप-नियम (12) अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दोषी कर्मचारी/सरकारी सेवक को पारित आदेशों को प्रषित करने के संबंध में है।

14. मौजूदा मामले में, वादी को आठ आरोप लगाते हुए आरोप-पत्र दिया गया था। जांच अधिकारी ने छह आरोप सिद्ध पाए और सातवां और आठवां आरोप सिद्ध नहीं हुआ। छह आरोपों के संबंध में भी, नियोक्ता द्वारा केवल आरोप संख्या 6 के संबंध में केवल दो गवाह प्रस्तुत किए गए और आरोप संख्या 1 से 5 के संबंध में कोई भी गवाह या साक्ष्य जांच अधिकारी के सामने प्रस्तुत नहीं किया गया। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि जांच कार्यवाही, जांच रिपोर्ट और बर्खास्तगी आदेश भी कानून के विरूद्ध हैं और सीसीए नियमों का भी उल्लंघन है। यह प्रस्तुत किया गया है कि, आरोप-पत्र प्राप्त होने पर, वादी को मांग के बावजूद आवश्यक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गये। वादी ने आवश्यक दस्तावेजों की सूची के साथ दिनांक 08.12.2008 को आवेदन दायर किया, फिर से 15.12.2008, 16.12.2008, 24.12.2008 और 02.01.2009 को अनुस्मारक प्रस्तुत किए गए। विस्तृत अनुस्मारक दिनांक 07.01.2009 और 16.01.2009 भी जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए, लेकिन अपीलार्थी को कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए और दस्तावेजों के अभाव में अपीलार्थी अपना बचाव प्रभावी ढंग से

प्रस्तुत नहीं कर सका। दस्तावेजों की मांग करने वाले आवेदनों को प्रदर्श-2 से प्रदर्श-11 तक रिकॉर्ड पर रखा गया है। वादी (पीडब्लू-1) से जिरह में, ऐसे आवेदनों की प्रस्तुति पर कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था। प्रत्यर्थी के गवाह (डीडब्लयू-1) ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि आवेदन (प्रदर्श-2 से प्रदर्श-11), वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए थे जो विभाग में प्राप्त हुए थे। वह यह दिखाने के लिए इस साक्ष्य का खंडन नहीं कर सका कि वादी को अपने बचाव के लिए आवश्यक दस्तावेज़ उपलब्ध कराए गए थे। मांग के बावजूद दोषी कर्मचारी को दस्तावेजों की आपूर्ति न करना सीसीए नियमों के नियम 16(3) का स्पष्ट उल्लंघन है।

एस के दत्त शर्मा बनाम राजस्थान सरकार [(1990) 1 आरएलआर 1], के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि नियम 16 का अनुपालन अनिवार्य है और दस्तावेजों की आपूर्ति न करना घातक है और पूरी जांच को खराब करता है।

उत्तर प्रदेश सरकार बनाम सरोज कुमार सिन्हा [(2010) 1 एससीसी (एल एंड एस) 675, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना कि उन दस्तावेजों की प्रतियों को अस्वीकार करना, जो दोषी कर्मचारी के विरूद्ध आरोप-पत्र का आधार बने, प्राकृतिक न्याय से इनकार है और ऐसे में स्थिति, जांच ख़राब हो गई है। यह माना गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के आधार पर, प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार कोई विभागीय जांच की जानी चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय के नियमों की बुनियादी आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाए जो कर्मचारी पर लगाए जाने पर सजा में परिणत हो सकती है। इस मामले में यह भी माना गया है कि आरोपों के संबंध में गवाहों से पूछताछ न करने से पूरी जांच ख़राब हो जाती है।

बाबूलाल बनाम राजस्थान सरकार [(2002) 1 आइएलएन 475], के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खण्डपीठ ने माना कि अपराधी अधिकारी अभियोजन प्राधिकारी द्वारा भरोसा किए जाने वाले बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां प्राप्त करने का पात्र होने के अलावा, वह ऐसे दस्तावेजों की प्रतियां मांगने का भी पात्र है, जिन्हें वह अपनी रक्षा की तैयारी के लिए प्रासंगिक मानता है और जो अभियोजन प्राधिकारी की अभिरक्षा में हैं। और यह आगे माना गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने बचाव के लिए अपराधी अधिकारी द्वारा मांगे जाने पर दस्तावेज उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है।

दस्तावेज़ों की आपूर्ति न करने का अर्थ यह होगा कि दोषी अधिकारी को अपने ख़िलाफ़ लगाए गए आरोपों के ख़िलाफ़ अपना बचाव तैयार करने और प्रस्तुत करने का उचित अवसर नहीं मिल पाएगा। खंडपीठ ने **खेम चंद बनाम भारत संघ [एआईआर (1958) एससी 300]** के मामले में दिए गए माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया।

15. इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि जांच की कार्यवाही, जो वादी के बर्खास्तगी आदेश में परिणत होती है, सीसीए नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लंघन है जो अनुपालन के लिए अनिवार्य प्रकृति की हैं।

16. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर भी जोर दिया है कि जांच अधिकारी दोनों पक्षों द्वारा दस्तावेजों को स्वीकार करने और अस्वीकार करने के लिए कर्तव्यबद्ध था, लेकिन सीसीए नियमों की इस अनिवार्य आवश्यकता का पालन नहीं किया गया है। इस न्यायालय ने जांच रिपोर्ट (प्रदर्श-14) के अवलोकन से देखा है कि यह कहीं भी नहीं दर्शाता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों को स्वीकार और इनकार के लिए कानून के नियम की आवश्यकता का अनुपालन किया गया था और इसलिए, इस संबंध में भी, वादी के विरुद्ध जांच कार्यवाही और बर्खास्तगी आदेश निष्प्रभावी हैं और सीसीए नियमों के विरुद्ध हैं।

17. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि केवल जांच अधिकारी के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि दस्तावेजों को गवाहों के साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जाना आवश्यक है, और उन्हें प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जाना भी आवश्यक है और उसके बाद ही, जांच अधिकारी उन पर विचार कर सकते हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जीएफ और एआर नियम लागू नहीं थे, लेकिन फिर भी जीएफ और एआर नियमों का पालन न करने के आरोप सिद्ध हुए थे।

18. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार आग्रह किया है कि जहां वादी का बर्खास्तगी आदेश दिनांक 14.07.2009 (प्रदर्श-14) सीसीए नियमों के नियम 16 का उल्लंघन है, वहीं अपीलीय प्राधिकारी ने उसका निर्णय लेते समय सीसीए नियमों के नियम 30 का भी पालन नहीं किया है। अपील और अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009 भी सीसीए नियमों के नियम 30(2) का उल्लंघन है, जो कानून की दृष्टि से टिकाऊ नहीं है। अपील का ज्ञापन (प्रदर्श-15 और प्रदर्श-16) 54 दस्तावेजों के साथ रिकॉर्ड पर रखा गया है। यह आरोप लगाया गया है कि जांच के निष्कर्ष के बाद वादी को आर.टी.आई.

अधिनियम के तहत दस्तावेज उपलब्ध कराए गए थे, जो अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन अपीलार्थी द्वारा किए गए एक भी बिंदु, दस्तावेज़ या विधिक प्रस्तुतीकरण पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा विचार नहीं किया गया था और अपील को अनकहे और गूढ़ आदेश द्वारा लापरवाही से खारिज कर दिया गया था।

19. यह न्यायालय सीसीए नियम, 1958 के नियम 30 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत करना उचित और उचित मानता है::

30. अपीलों पर विचार: (1)....निलंबन आदेश के विरूद्ध अपील के मामले में, अपीलीय प्राधिकारी को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या नियम 13 के प्रावधान के आलोक में और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निलंबन का आदेश सही है या नहीं और तदनुसार आदेश की पुष्टि करनी चाहिए या उसे रद्द करना चाहिए।

(2) नियम 14 में निर्दिष्ट किसी भी दंड को अधिरोपित करने वाले आदेश के विरूद्ध अपील के मामले में, अपीलीय प्राधिकारी इस पर विचार करेगा:

(क) क्या इन नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है और यदि नहीं, तो क्या ऐसे गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप संविधान के किसी प्रावधान का उल्लंघन हुआ है या न्याय की विफलता हुई है;

20. इस न्यायालय ने अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009 (प्रदर्श-54) का अवलोकन किया है। अपीलीय प्राधिकारी ने प्रत्येक आरोप पर कमोबेश वही निष्कर्ष दोहराए जो जांच प्राधिकारी ने पारित किए थे, और अपीलार्थी द्वारा उठाए/प्रस्तुत किए गए किसी भी बिंदु या दस्तावेज़ पर कोई चर्चा नहीं हुई है। अपील अस्वीकृति आदेश में, केवल एक संदर्भ दिया गया है कि अपीलार्थी ने अपनी अपील में कई मुद्दे उठाए थे कि उसे प्रासंगिक दस्तावेज नहीं दिखाए गए थे और साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना आरोप सिद्ध कर दिए गए थे, लेकिन चुनौती के ऐसे आधारों से निपटने के दौरान, अपीलीय प्राधिकारी ने बस यह कहा कि जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि अपीलार्थी को हर दस्तावेज की प्रति दी गई थी और आरोप दस्तावेजी साक्ष्यों से सिद्ध पाए गए, इसलिए आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन अधिकारी की ओर से किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं थी। अपीलीय प्राधिकारी ने आरोप संख्या 1 से 6 के संबंध में अपीलार्थी द्वारा अपने बचाव में प्रस्तुत किए गए किसी भी दस्तावेज़ को प्रस्तुत नहीं किया है। वादी (पीडब्लू-1) ने अपने साक्ष्य में इन सभी दस्तावेजों को साक्ष्य और प्रत्यर्थी की गवाही में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है।

डी.डब्लयू.-1) ने भी इन सभी दस्तावेज़ों को स्वीकार किया है। यह न्यायालय भी निर्णय के बाद के भाग में आरोपों के दस्तावेजों की प्रासंगिकता पर विचार करेगा, लेकिन यहां यह देखना पर्याप्त है कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपील पर बिना सोचे-समझे अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत आधारों और दस्तावेजों पर चर्चा किए बिना निर्णय दिया। अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009, स्पष्ट रूप से सीसीए नियमों के नियम 30 का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया प्रतीत होता है।

सिया राम बनाम राजस्थान सरकार [(1992) 1 डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 352], के मामले में, यह माना गया कि अपीलीय प्राधिकारी का आदेश अवैध है क्योंकि इसे सीसीए नियमों के नियम 30(2) के अनुसार पारित नहीं किया गया है। राजस्थान उच्च न्यायालय की एकलपीठ ने इस अनुपात को तय करते समय **फूल चंद बनाम राजस्थान सरकार [(1980) डब्लूएलएन (यूसी) 311] और रामचन्द्र बनाम भारत संघ [एआईआर (1986) एससी 1173]** के मामलों में दिए गए उच्च न्यायालय के पिछले निर्णय पर भरोसा किया है। यह न्यायालय भी कानून के ऐसे प्रस्ताव से सहमत है।

वासुदेव के. हरदासानी बनाम राजस्थान सरकार [(1989) 1 आरएलआर 99], के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना कि जहां अपीलीय प्राधिकारी ने सीसीए नियमों के नियम 30(2) के आदेश का पालन नहीं किया है, अपीलीय प्राधिकारी का आदेश रद्द हो गया है और रद्द कर दिया गया। खंडपीठ ने यह भी देखा कि सीसीए नियमों के नियम 30 (2) में प्रावधान है कि अपीलीय प्राधिकारी इस बात पर विचार करेगा कि क्या सीसीए नियमों में निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन किया गया है और यदि नहीं, तो क्या इस तरह के गैर-अनुपालन के परिणामस्वरूप भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन हुआ है संविधान या न्याय की विफलता हूई है। खंडपीठ ने रामचंद्र (सुप्रा.) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश का पालन किया, जहां यह विशेष रूप से कहा गया था कि अपीलीय प्राधिकरण को अपील में उसके समक्ष उठाए गए विवादों से निपटने के लिए एक तर्कसंगत आदेश पारित करना चाहिए। नियम की शब्दावली का यांत्रिक उत्पादन पर्याप्त नहीं होगा। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की स्थिरता के बारे में निर्णय लेने के लिए अपीलीय प्राधिकारी को साक्ष्यों को रिकॉर्ड में दर्ज करना चाहिए और पारित आदेश से यह पता चलना चाहिए कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपना दिमाग लगाया है और अपील में उठाई गई आपत्ति पर विचार किया है।

21. मौजूदा मामले में, इस न्यायालय ने पाया कि जांच की कार्यवाही स्वयं ही नियम 16 के तहत परिकल्पित प्रक्रिया को दूषित कर रही है। सीसीए नियमों का पालन नहीं किया गया और इसके अलावा अपीलीय प्राधिकारी ने भी एक गुप्त और अनकहे आदेश द्वारा अपील को खारिज कर दिया, जो स्वयं सीसीए नियमों के नियम 30 (2) का उल्लंघन है।

22. दिनांक 14.07.2009 को सेवा से बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश और दिनांक 12.11.2009 को अपील अस्वीकृति आदेश को चुनौती स्वीकार करने के लिए, कि क्या अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप संख्या 1 से 6 तक को दुर्भावनापूर्ण और बिना किसी साक्ष्य के सिद्ध किया गया है और क्या अपीलार्थी के उत्तर, स्पष्टीकरण और अभ्यावेदन पर विचार किया गया या नहीं, अपीलार्थी को बचाव का अवसर दिया गया या नहीं, क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया गया है या नहीं? यह न्यायालय आरोपों की प्रकृति, उसके उत्तर और साक्ष्य के साथ-साथ जांच अधिकारी के निष्कर्ष और फिर अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्षों की जांच कर रहा है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि ट्रायल कोर्ट ने कानून की गलत धारणा के तहत यह नहीं देखा कि सिविल कोर्ट के पास जांच करने, विचार करने और लागू आदेशों को पारित करने में सीसीए नियमों के उल्लंघन को देखने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। चूँकि संपूर्ण साक्ष्य ट्रायल कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और रिकॉर्ड पर उपलब्ध है, इसलिए, यह न्यायालय मुकदमे को ट्रायल कोर्ट के पास वापस भेजने के बजाय, रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य पर विचार करना न्यायोचित और उपयुक्त समझता है क्योंकि ऐसा करने से मुकदमा लम्बा खींचेगा, जो कि है पहले से ही बारह वर्ष से अधिक समय चल रहा है और इस बीच, अपराधी कर्मचारी सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका होगा। इसलिए, मुकदमे को वापस भेजना न्याय के हित में नहीं होगा।

23. दिनांक 01.12.2008 के आरोपों का ज्ञापन प्रदर्श-ए1 के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

23.1 वादी के विरुद्ध पहला आरोप यह लगाया गया कि उसने कई अनुस्मारक के बावजूद वर्ष 1996 से 1999 तक अधीनस्थ कर्मचारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (एसीआर) अग्रेषित नहीं की।

इस आरोप को सिद्ध करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष किसी गवाह की जांच नहीं की गई और केवल दस्तावेज (प्रदर्श-P1 से प्रदर्श-P13) प्रस्तुत किए गए। वादी ने

अपने उत्तर/स्पष्टीकरण दिनांक 17.04.2009 (उदा.ए2) में प्रस्तुत किया कि ऐसे आरोप निराधार हैं और उन्होंने विभिन्न पत्रों के माध्यम से एसीआर अग्रेषित किया था। वादी ने प्रदर्श 17 से प्रदर्श 20 दिनांक 17.06.1997 और 11.07.1997 के तहत ऐसे पत्र प्रस्तुत किए हैं, और प्रत्येक सत्र अर्थात 1996-1997, 1997-1998 और 1998-1999 का विवरण भी प्रस्तुत किया है जिसमें ऐसे पत्र भेजे गए थे। वादी ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से एसीआर अग्रेषित करने की बात कही, लेकिन प्रत्यर्थीगण द्वारा ऐसे मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर उससे जिरह नहीं की गई। प्रत्यर्थी के गवाह डीडब्ल्यू-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि पत्रों (प्रदर्श-17 से प्रदर्श-19) के माध्यम से, वादी ने कार्यालय में अपने अधीनस्थ अधिकारियों की एसीआर भेजी थी। प्रदर्श-20 के संबंध में डीडब्ल्यू-1 ने खंडन किया लेकिन इसे विभाग द्वारा ही आर.टी.आई. अधिनियम के तहत जारी किया गया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि ऐसे पत्रों का विवरण उत्तर/स्पष्टीकरण (प्रदर्श-क2) के साथ-साथ प्रतिनिधित्व (प्रदर्श-13) में भी उल्लिखित है। जांच रिपोर्ट (प्रदर्श-12) के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि हालांकि दस्तावेज प्रदर्श-पी1 से प्रदर्श-पी13 तक न तो किसी गवाह द्वारा प्रस्तुत किया गया और न ही प्रदर्शित किया गया, लेकिन ये दस्तावेजों पर विचार किया गया और अपीलार्थी के विरूद्ध दर्ज किया गया और केवल इन दस्तावेजों के आधार पर, आरोप संख्या 1 को सिद्ध माना गया है। वादी की इस आपत्ति पर विचार नहीं किया गया कि दस्तावेज न तो उपलब्ध कराये गये और न ही दस्तावेज मंगाये गये। अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 12.11.2009 के अस्वीकृति आदेश में दस्तावेजों (प्रदर्श-17 से प्रदर्श-20) पर भी विचार नहीं किया है।

23.2 वादी पर दूसरा आरोप यह लगाया गया कि उसने वर्ष 1998 में 786वें उस मेले, अजमेर के अवसर पर सामग्री की खरीद में जीएफ एवं एआर नियमों का पालन किए बिना 1,20,000/- रुपये की अनियमितता की।

इस आरोप के संबंध में उत्तर दिया गया कि यह दस साल पुराना मामला है जिसे इतने लंबे विलंब के बाद नहीं खोला जा सकता और आरोप खारिज कर दिया गया. वादी ने अपने साक्ष्य में यह दिखाने के लिए दस्तावेज़, प्रदर्श-21 से प्रदर्श-31 तक प्रस्तुत किए हैं, कि सामग्री की खरीद समिति द्वारा अनुमोदित सूची के अनुसार की गई थी और बाद में विभाग के प्रमुख द्वारा अनुमोदित की गई थी और अंततः ऑडिट में कोई आपत्ति नहीं पाई गई थी। जांच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि इस आरोप को सिद्ध करने के

लिए कोई गवाह उपस्थित नहीं हुआ और दस्तावेज, प्रदर्श-15 से प्रदर्श-54 तक, अपने स्वयं के द्वारा चिह्नित किए गए थे। जांच अधिकारी ने प्रदर्श-51 के आधार पर पाया कि दोषी कर्मचारी ने विभिन्न वस्तुओं की खरीद में कुछ अनियमितताओं को आंशिक रूप से स्वीकार किया है। अपीलीय प्राधिकारी ने भी दस्तावेजों पर चर्चा किए बिना ऐसे आरोपों की पुष्टि की, प्रदर्श-21 से प्रदर्श-31। पीडब्लू-1 ने स्पष्ट रूप से बताया है कि दस्तावेजों (प्रदर्श-21 से प्रदर्श-31) के माध्यम से, यह स्पष्ट है कि खरीद को समिति द्वारा अनुमोदित किया गया था। डी.डब्लयू.-1 स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि प्रदर्श-21 से प्रदर्श-31, सरकारी रिकॉर्ड का हिस्सा हैं। डीडब्ल्यू-1 ने माना कि 786वें मेले में आए हुए व्यय का ऑडिट पहले ही किया जा चुका है और ऑडिट में कोई आपत्ति नहीं पाई गई। उन्होंने स्वीकार किया कि प्रदर्श 22 एवं 23 विभाग की अनुमोदन सूची है जिसके आधार पर सामग्री खरीदी गई है। डीडब्ल्यू-1 ने यह भी स्वीकार किया कि प्रदर्श 25 से 31, 786वें उस मेले में खरीदी गई सामग्री की सूची है, जिस पर तीन व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं और उनमें उल्लिखित दरें विभाग द्वारा अनुमोदित हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि वादी ने ऐसे आरोप पर अपना पूरा बचाव/स्पष्टीकरण दे दिया है। अन्यथा ऐसा आरोप है अत्यधिक देर से और एक बार यह रिकॉर्ड पर आ गया कि व्यय का ऑडिट किया गया था, जहां कोई गलती नहीं पाई गई, विभाग-अभियोजन पक्ष को इस तरह के आरोप लगाने और खोलने से रोक दिया गया है। जांच रिपोर्ट में वादी द्वारा संदर्भित स्पष्टीकरण और दस्तावेजों के बारे में कोई चर्चा नहीं है और यह स्पष्ट है कि वादी को न तो दस्तावेजों की प्रतियां प्रदान की गईं और न ही जिन दस्तावेजों को मंगाने की प्रार्थना की गई थी, उन्हें तलब किया गया था, हालांकि वे विभाग के रिकॉर्ड का हिस्सा हैं। वादी ने यह भी प्रस्तुत किया कि जीएफ और एआर नियम वर्ष 1998 में लागू नहीं थे और दस्तावेज़, प्रदर्श-24, दिनांक 08.12.1998 के आदेश के अनुसार, जीएफ और एआर लागू किए गए थे, इसलिए, 08.12.1998 से पहले, कोई जीएफ और एआर नियम लागू नहीं थे। इस तरह के बचाव पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और आरोप संख्या 2 को गलत सिद्ध कर दिया गया है।

23.3 वादी के विरूद्ध लगाया गया तीसरा आरोप यह था कि वादी ने अनाधिकृत रूप से श्री अरुण कुमार गुप्ता को 03.12.2001 को पुनर्अभिविन्यास पाठ्यक्रम के लिए नियुक्त किया, और उनकी रेलवे रियायत का प्रबंधन किया।

इस आरोप के संबंध में, वादी ने दस्तावेज़, प्रदर्श-32 से 34 प्रस्तुत किए हैं, जो श्री अरुण कुमार गुप्ता को पुनर्अभिविन्यास पाठ्यक्रम के लिए नामांकित करने के लिए मुख्यालय के आदेश हैं। वादी ने उत्तर प्रस्तुत किया था कि उसे पुनर्अभिविन्यास पाठ्यक्रम के लिए किसी व्यक्ति की प्रतिनियुक्ति करने का अधिकार नहीं है और यह प्रधान कार्यालय में वरिष्ठ द्वारा किया गया था। डी.डब्लयू.-1 ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि प्रदर्श-32 विभाग का वह पत्र है जिसके माध्यम से श्री अरुण कुमार गुप्ता को रीओरिएंटेशन कोर्स के लिए भेजा गया था। डीडब्ल्यू-1 भी स्वीकार करता है कि प्रदर्श-34 के तहत, श्री अरुण कुमार गुप्ता को वर्ष 2002 में शिविर में भेजा गया था। वह स्वीकार करते हैं कि यह विभाग है जो रेलवे रियायत की प्रक्रिया का अनुपालन करता है और श्री अरुण कुमार गुप्ता के मामले में, विभाग द्वारा यह प्रक्रिया की गई। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर स्पष्ट साक्ष्य हैं कि वादी के विरूद्ध लगाए गए आरोप निराधार हैं, फिर भी जांच रिपोर्ट में दस्तावेजों (प्रदर्श-पी55 से प्रदर्श-पी58) के आधार पर इस आरोप को सिद्ध माना गया है। जांच रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि ऐसे दस्तावेजों और आरोप को सिद्ध करने के लिए कोई गवाह उपस्थित नहीं हुआ। वादी के उत्तर/स्पष्टीकरण और उन दस्तावेजों (प्रदर्श-32 से प्रदर्श-34) के बारे में कोई चर्चा नहीं है, जिन्हें डीडब्ल्यू-1 ने स्वयं स्वीकार किया है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि वादी द्वारा मांगे गए दस्तावेज़ नहीं मांगे गए और वादी को अपना बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया।

23.4 वादी पर लगाया गया चौथा आरोप यह था कि वर्ष 2001 में वादी ने प्रधान कार्यालय के आदेश के विरूद्ध श्री हजारी लाल के स्थान पर श्री भंवर लाल को राष्ट्रीय जंबूरी भेजा था जो कि उच्च अधिकारियों के निर्देशों की जानबूझकर अवहेलना है।

इस तरह के आरोप के बचाव में, वादी ने यह दिखाने के लिए दस्तावेज प्रदर्श-35 से 40 प्रस्तुत किए हैं कि श्री हजारी लाल को ओरिएंटेशन में भेजने के लिए मुख्यालय से आदेश जारी किए गए थे और इसलिए, वादी के विरूद्ध लगाया गया आरोप निराधार है। पीडब्लू-1 ने स्पष्ट रूप से अपना साक्ष्य प्रस्तुत किया कि प्रधान कार्यालय के आदेशानुसार भंवर लाल को भेजा गया। उसके साक्ष्य और दस्तावेज (प्रदर्श-35 से प्रदर्श-40) पर पीडब्लू-1 से उसकी कोई जिरह नहीं हुई है बल्कि डीडब्ल्यू-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि यह सही है कि जनवरी, 2002 में, आयुक्त, बीकानेर ने जंबूरी और प्रदर्श 35-40 के लिए श्री भंवर लाल, के नाम की सिफारिश की थी। यह सरकारी रिकॉर्ड के हिस्से में हैं। इस

प्रकार, वादी के स्पष्ट बचाव के बावजूद, जांच अधिकारी ने दस्तावेजों (पूर्व-पी59 से पी62) के आधार पर वादी के विरूद्ध इस आरोप को सिद्ध पाया है। जांच रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट है कि कोई भी गवाह ऐसे दस्तावेजों को सिद्ध करने और प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ और उसी का प्रदर्श करना है। अपीलीय प्राधिकारी ने वादी के स्पष्टीकरण और उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों पर कोई ध्यान नहीं दिया है। यह सिद्ध हो गया है कि मांग के बावजूद वादी को न तो दस्तावेज (प्रदर्श-59 से प्रदर्श-62) उपलब्ध कराए गए और न ही बचाव के दस्तावेज मांगे गए। यह सीसीए नियमों के नियम 16(3) का उल्लंघन स्पष्ट है और इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है।

23.5 वादी पर लगाया गया पांचवां आरोप यह था कि 2002 में वादी ने तीन दिन की आकस्मिक छुट्टी के लिए आवेदन किया था, लेकिन छुट्टी रद्द किए बिना उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर कर दिया।

ऐसे आरोप के बचाव/स्पष्टीकरण में, वादी ने साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि 12,13 और 14 अगस्त, 2002 को, हालांकि उसने आकस्मिक छुट्टी के लिए आवेदन किया था, लेकिन छुट्टी रद्द करने का आवेदन पहले ही प्रधान कार्यालय को भेज दिया गया था और इन तीन दिनों में उसने अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया। और ऑफिस में काम किया। दस्तावेज़, प्रदर्श 41 से 47, यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए गए हैं कि उन्होंने इन तीन दिनों की अवधि के दौरान कार्यालय में काम किया था और यह गलत है कि उन्होंने केवल अपनी उपस्थिति दर्ज की। पीडब्लू-1 से उसके साक्ष्यों और दस्तावेजों (प्रदर्श-41 से प्रदर्श-47) पर जिरह नहीं की गई है। डी.डब्लयू.-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि दस्तावेज़ (पूर्व- 41 से प्रदर्श-47) विभाग के रिकॉर्ड का हिस्सा हैं और ये दस्तावेजों पर वादी-शांति लाल जैन द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए हैं। डी.डब्लयू.-1 ने स्वीकार किया है कि दस्तावेज़ों (प्रदर्श-41 से प्रदर्श-47) के अनुसार, जो सरकारी रिकॉर्ड का हिस्सा हैं, शांति लाल जैन ने कार्यालय में काम किया था। इस प्रकार, यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध हैं कि ऐसा आरोप गलत तरीके से लगाया गया था और वादी द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को सिद्ध करने की अनुमति नहीं दी गई थी। वादी ने ये दस्तावेज़ अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किये लेकिन अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009 में आरोप संख्या 5 के संदर्भ में इस बारे में कोई चर्चा नहीं है। इसलिए, यह

स्पष्ट है कि वादी को ऐसे आरोप का बचाव करने का अवसर नहीं दिया गया और दस्तावेज़ (प्रदर्श-41 से प्रदर्श-47), जो सरकारी रिकॉर्ड का हिस्सा हैं, मांग के बावजूद नहीं मांगे गए। जांच अधिकारी ने विभाग के रिकॉर्ड पर विचार किए बिना और वादी को बचाव का अवसर दिए बिना मनमाने ढंग से वादी के विरूद्ध ऐसा आरोप सिद्ध कर दिया है। यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी ने विभाग के रिकॉर्ड पर ध्यान नहीं दिया और वादी के बचाव को नजरअंदाज करते हुए सिर्फ विभाग के साक्ष्य पर भरोसा किया। अपने उत्तर (प्रदर्श 1 और ए 2) में, वादी ने स्पष्ट रूप से आरोप संख्या 5 से इनकार किया है और अपना बचाव प्रस्तुत किया है कि छुट्टी रद्द करने के लिए आवेदन जमा करने के बाद, 12, 13 और 14 अगस्त, 2002 को उन्होंने कार्यालय में काम किया और जिसके लिए रिकॉर्ड भेजा जा सकता है। जांच रिपोर्ट में उनके बचाव पर कोई विचार नहीं किया गया है, जिससे पता चलता है कि सीसीए नियमों के नियम 16 के उल्लंघन में जांच कार्यवाही की गई थी।

23.6 वादी पर छठा आरोप यह लगाया गया कि उसे अपने सहकर्मी से 3000/- रूपये और 4000/- रुपये दिये गये, लेकिन इस राशि को कैश बुक में दर्ज नहीं किया और इस तरह उसने गबन कर लिया।

ऐसे आरोप के बचाव में, वादी ने दस्तावेज़ (प्रदर्श-48 से प्रदर्श-51) प्रस्तुत किये हैं। प्रदर्श-51 में चार व्यक्तियों द्वारा 20,000/- रुपये के अंशदान की प्रविष्टि है। प्रदर्श-48 कैशियर द्वारा जारी की गई रसीद है और प्रदर्श-49 बहीखाते की प्रति है जहां खाते की प्रविष्टि होती है। वादी से उसके साक्ष्यों और ऐसे दस्तावेजों पर जिरह नहीं की गई है। इसके विपरीत, डी.डब्लयू.-1 ने स्वीकार किया है कि दस्तावेज़ (प्रदर्श-48 से प्रदर्श-51) सरकारी रिकॉर्ड का हिस्सा हैं और रसीद प्रदर्श-48 में मांडू राम के नाम का उल्लेख है। प्रदर्श-49 के अनुसार मांडू राम द्वारा भुगतान की गई राशि कार्यालय में जमा है। उन्होंने स्वीकार किया कि यह सही है कि प्रदर्श-50 व 51, मंडल रैली के खर्च से संबंधित दस्तावेज हैं। यह साक्ष्य वादी के विरूद्ध लगाए गए ऐसे आरोप को निपटाने के लिए पर्याप्त है। जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि प्रस्तुतिकरण अधिकारी ने आरोप संख्या 6 के समर्थन में श्री एम आर वर्मा और श्री सुनील सोलंकी नामक दो गवाह ने और दस्तावेज (प्रदर्श-67 से प्रदर्श-80) प्रस्तुत किये। हालाँकि एक और गवाह श्री. रामचन्द्र शर्मा को भी प्रस्तुत किया गया था, लेकिन वह व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हुए और केवल अपना

हलफनामा भेजा, जिसे प्रदर्श-पी85 के रूप में रिकॉर्ड पर लिया गया। ऐसे साक्ष्यों के आधार पर, यह माना गया कि वादी शांति लाल जैन को 3000/- रुपये के गबन के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, लेकिन श्री एम आर वर्मा से प्राप्त 4000/- रुपये के गबन के लिए दोषी ठहराया गया था। जांच रिपोर्ट में कहीं भी श्री एम आर वर्मा द्वारा भुगतान की गई राशि की प्रविष्टियों के बारे में नहीं बताया गया है जैसा कि कार्यालय रिकॉर्ड में उपलब्ध है। वादी के बचाव में इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि राशि का भुगतान व्यक्तियों द्वारा सीधे कैशियर को किया गया था। वादी ने दावा किया है कि कैशियर की रसीद जारी की गई थी, जो रिकॉर्ड में उपलब्ध थी लेकिन न तो उसे मांगा गया और न ही भेजा गया। अपील अस्वीकृति आदेश दिनांकित 12.11.2009 भी कथित राशि के संबंध में सरकारी रिकॉर्ड में इन प्राप्तियों और प्रविष्टियों के बारे में कहीं भी नहीं बताता है। जांच रिपोर्ट के अवलोकन से श्री एम आर वर्मा के बयान विश्वसनीय नहीं हैं और श्री रामचन्द्र शर्मा, जिनका हलफनामा प्रदर्श-पी85 के रूप में रिकॉर्ड में लिया गया था, व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हुए, फिर भी जांच अधिकारी ने उनके साक्ष्य पर भरोसा किया और वादी को 4000/- रुपये के गबन के लिए दोषी ठहराया। दस्तावेज़ प्रदर्श-48 का अवलोकन जिसमें रु. 20,000/- की नकद राशि की रसीद है 29.03.2005 स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उसमें श्री एम आर वर्मा का नाम उल्लेखित है। ऐसा प्रतीत होता है कि वादी को अपना बचाव प्रस्तुत करने का कोई अवसर नहीं दिया गया और दस्तावेज़ (प्रदर्श-48 से प्रदर्श-51) जो सरकारी रिकॉर्ड का हिस्सा हैं, तलब नहीं किए गए। जांच अधिकारी ने मनमाने तरीके से वादी के विरूद्ध 4000/- रुपये के गबन का आरोप सिद्ध कर दिया, जो दुर्भावनापूर्ण भी प्रतीत होता है।

23.7 जहां तक आरोप संख्या 7 और 8 का प्रश्न है, दोनों आरोप स्वयं जांच अधिकारी द्वारा हटा दिए गए हैं, इसलिए इन आरोपों के बारे में चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

24. ट्रायल कोर्ट के समक्ष वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों को देखने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि वादी ने अपने विरूद्ध लगाए गए प्रत्येक आरोप के लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण/बचाव दिया है। दिनांक 17.04.2009 (प्रदर्श-1) के उत्तर/अभ्यावेदन में दस्तावेजों का पूरा विवरण और संदर्भ है और ऐसे सभी दस्तावेजों को ट्रायल कोर्ट के समक्ष साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेकिन जांच रिपोर्ट में वादी के बचाव के संबंध में कोई विचार/चर्चा नहीं की

गयी है। यह मानने के लिए रिकॉर्ड पर उचित कारण और साक्ष्य हैं कि अपने बचाव के समर्थन में दस्तावेज़ और दस्तावेजों की मांग करने के बावजूद इन दस्तावेजों का न देया जाना वादी को उन्हें नहीं दिया गया तथा वादी द्वारा प्रस्तुत बचाव पर विचार न करना सीसीए नियमों के नियम 16(3), 16(10) और 16(10बी) का स्पष्ट उल्लंघन है। ऐसा प्रतीत होता है कि आरोप संख्या 1 से 5 को सिद्ध करने के लिए कोई गवाह उपस्थित नहीं हुआ, और आरोप संख्या 6 को सिद्ध करने के लिए केवल दो गवाह उपस्थित हुए। विभाग द्वारा जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेज भी किसी साक्ष्य से प्रमाणित नहीं हुए। केवल जांच अधिकारी के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत करने से यह पर्याप्त नहीं होगा जब तक दस्तावेज़ों को किसी गवाह द्वारा प्रदर्शित और सिद्ध नहीं किया जाता तब तक पर्याप्त माना जाता है।

अमृतलाल बनाम राजस्थान सरकार [(1981) डब्ल्यूएलएन यूसी 457],के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने माना है कि विभागीय जांच के दौरान किसी भी दस्तावेज को दाखिल करना ऐसे दस्तावेजों को सिद्ध करने के बराबर नहीं है, जब तक कि इन्हें दूसरे द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। पक्ष या सिद्ध, वे मामले में साक्ष्य नहीं बनते। यह स्पष्ट रूप से माना गया कि पूछताछ के दौरान केवल पत्र प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं था। वर्तमान मामले में, प्रस्तुतिकरण अधिकारी द्वारा प्रस्तुत कोई भी दस्तावेज़ किसी भी गवाह द्वारा सिद्ध या प्रदर्शित नहीं किया गया है।

रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक [(2009) 1 एससीसी (एल एंड एस) 398], के मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना कि विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाये गये आरोप सिद्ध नहीं हो सके। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पार्टियों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। उस मामले में, चूंकि किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी और आरोपों को अनुमानों के आधार पर सिद्ध कर दिया गया था। जांच अधिकारी द्वारा अनुमान और आगे निकाला गया एक निष्कर्ष जांच अधिकारी द्वारा, स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं पाया गया, इसलिए, उच्चतम न्यायालय ने अपील की अनुमति दी और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया और अपीलार्थी को पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया गया।

भारत संघ बनाम बी के दत्ता [(1973) आरएलडब्ल्यू 714], के मामले में जहां राजस्थान उच्च न्यायालय की एकलपीठ ने पाया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी दोषी कर्मचारी के स्पष्टीकरण पर विचार करने में विफल रहा और जहां आरोपों को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य हैं, बर्खास्तगी का आदेश रद्द कर दिया गया।

डॉ. बी के चौधरी बनाम राजस्थान सरकार [(1993) 1 डब्लूएलसी (राजस्थान) 47], के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की एकलपीठ ने पाया कि दोषी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत विस्तृत उत्तर पर विचार किए बिना जांच रिपोर्ट दिमाग का उपयोग नहीं करने को दर्शाता है और सीसीए नियमावली की धारा 16(4) को जांच अधिकारी ने कोरी औपचारिकता मान लिया है। अंत में, जांच की कार्यवाही रद्द कर दी गई और दोषी कर्मचारी को सभी परिणामी लाभ दिए गए।

25. यह भी देखा जा सकता है कि आदेश दिनांक 08.12.1998 (प्रदर्श.24) के अनुसार, जीएफ और एआर नियम लागू किए गए थे, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि 08.12.1998 से पहले कोई जीएफ और एआर नियम लागू नहीं थे, फिर भी आरोप संख्या 2 08.12.1998 से पहले जीएफ और एआर नियमों का पालन नहीं करना प्रमाणित माना गया है। इससे स्पष्ट है कि जांच अधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग नहीं किया गया और आरोप मनमाने ढंग से सिद्ध किये गये हैं।

26. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलार्थी-वादी को ऐसे दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए, जिन्हें अपना बचाव तैयार करने के लिए मांगा गयाय था और इसके अलावा जांच अधिकारी ने आवेदन किए जाने और अनुस्मारक देने के बावजूद दस्तावेजों (प्रदर्श-2 से प्रदर्श -11) को विभाग के रिकार्ड से नहीं तलब किया। दस्तावेजों की स्वीकृति एवं अस्वीकरण करना जांच अधिकारी द्वारा नहीं किया गया जिसके लिए वह कर्तव्यबद्ध था। जांच रिपोर्ट वादी द्वारा प्रस्तुत उत्तर/अभ्यावेदन पर विचार न किए जाने के कारण प्रभावित हुई है। वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वादी को बचाव और सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन है।

27. सिविल मामलों में, संभाव्यता की प्रबलता का सिद्धांत एक प्रसिद्ध सिद्धांत है और इस न्यायालय की राय है कि जब वादी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए

गए दस्तावेज़/साक्ष्य से यह स्थापित होता है कि वादी के पास बचाव के लिए आरोपों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त साक्ष्य थे, लेकिन मांग करने के बावजूद उन्हें ऐसे दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए, इसलिए, यह निष्कर्ष निकालने का उचित कारण है कि आरोप मनमाने ढंग से सिद्ध किए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वादी को जानबूझकर अपने बचाव के लिये दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गये और ऐसे कारणों से वादी का बर्खास्तगी आदेश दुर्भावनापूर्ण भी माना जा सकता है। इसके अलावा, जांच के समापन के बाद आर.टी.आई. के तहत अपीलार्थी द्वारा दस्तावेज़ प्राप्त किए जा सके। अपीलार्थी ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत किए लेकिन, इन दस्तावेजों पर विचार किए बिना उसकी अपील खारिज कर दी गई है। इसका कोई औचित्य नहीं है कि अपीलीय प्राधिकारी ने बचाव के उन दस्तावेजों पर विचार क्यों नहीं किया जो अपील के साथ प्रस्तुत किये गये थे। सीसीए नियमों के नियम 16 के साथ-साथ सीसीए नियमों के नियम 30 के अनिवार्य प्रावधानों का घोर उल्लंघन स्पष्ट है और इसलिए पूरी जांच कार्यवाही अवैध है और इस प्रकार दूषित है। इसलिए दिनांक 14.07.2009 और 12.11.2009 के आक्षेपित आदेश भी कानून की दृष्टि से ख़राब हैं और कानून में कायम रखने योग्य नहीं ठहराए जाने के योग्य हैं। तदनुसार, बिंदु क्रमांक 1 का निर्णय अपीलार्थी के पक्ष में किया जाता है।

28. जहां तक बिंदु संख्या 2 का प्रश्न है, यह स्वीकृत तथ्य है कि अपीलार्थी को दिनांक 03.10.2007 के आदेश द्वारा एओसी अर्थात सहायक संगठन आयुक्त के पद से निलंबित कर दिया गया था और उसके बाद उसका मुख्यालय जयपुर में रहा। अपीलार्थी को 01.12.2008 को आरोप-पत्र दिया गया और जांच के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी निलंबित रहा और अंततः आदेश दिनांक 14.07.2009 द्वारा सेवा से हटा दिया गया। केवल निलंबन को सेवा की समाप्ति या पद की समाप्ति के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसलिए, यह माना जाता है कि अपीलार्थी 14.07.2009 तक एओसी के पद पर था जब उसे सेवा से हटा दिया गया था। तदनुसार, यह बिंदु संख्या 2 अपीलार्थी के पक्ष में तय किया गया है।

29. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अपीलार्थी के विरूद्ध मुद्दे संख्या 1 और 2 का निर्णय इस कारण से किया कि ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेशों की जांच नहीं की है कि क्या वे सीसीए नियमों का उल्लंघन करते हैं या नहीं और अपने अधिकार क्षेत्र को केवल यह देखने तक ही सीमित रखा कि क्या आक्षेपित आदेश दुर्भावनापूर्ण हैं या नहीं। वास्तव में, ट्रायल

कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए मुद्दे संख्या 1 और 2 के निष्कर्षों को पढ़ने से पता चलता है कि ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्यों पर चर्चा नहीं की है और केवल सरसरी निष्कर्ष दर्ज किए हैं। निर्णय में सिर्फ साक्ष्यों का उल्लेख पर्याप्त नहीं है. यहां तक कि ट्रायल कोर्ट द्वारा आक्षेपित निर्णय में संदर्भित केस कानून पर भी ध्यान नहीं दिया गया है। दुर्भावना का तथ्य प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन से जुड़ा हुआ है। इस न्यायालय ने पाया कि प्रत्यर्थियों ने जानबूझकर सीसीए नियमों के नियम 16 और 30 के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन किया है और जानबूझकर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया है। वादी की रक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव डाला और इसलिए, बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश को दुर्भावनापूर्ण भी माना जा सकता है। यह न्यायालय रिकॉर्ड पर मौजूद संपूर्ण सामग्री की चर्चा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा है और पाया है कि ट्रायल कोर्ट ने वादी के विरूद्ध मुद्दे संख्या 1 और 2 पर निर्णय लेने में गलती की है। इसलिए, मुद्दे संख्या 1 और 2 के संबंध में ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों को उलट दिया जाता है और दोनों मुद्दों का निर्णय वादी के पक्ष में किया जाता है।

30. इस न्यायालय ने पाया कि जांच कार्यवाही, जांच रिपोर्ट, बर्खास्तगी आदेश दिनांक 14.07.2009, साथ ही अपील अस्वीकृति आदेश दिनांक 12.11.2009, कानून के विरुद्ध है और सीसीए नियमों के उल्लंघन के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन है, इसलिए, दोनों आक्षेपित आदेश दिनांक 14.07. 2009 और 12.11.2009 रद्द किये जाने योग्य हैं।

31. अब लंबित आदेशों को रद्द करने के परिणामस्वरूप, बकाया वेतन और अन्य परिणामी लाभों के संबंध में राहत के मुद्दे पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने देखा है कि यह विवाद में नहीं है कि अपीलार्थी ने दो दशकों से अधिक समय तक प्रत्यर्थियों की सेवा की थी। उनकी सेवा अवधि के दौरान, उनका पूरा करियर विचाराधीन आरोप-पत्र को छोड़कर बिना किसी शिकायत या आरोप-पत्र के, बेदाग और स्पष्ट रहा। अपीलार्थी का दिनांक 14.07.2009 का निष्कासन आदेश सीसीए नियमों, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाला और साथ ही मनमाना और दुर्भावनापूर्ण पाया गया है।

दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी. एड.) [(2013) 10 एससीसी 324], के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने किसी कर्मचारी की सेवा से गलत तरीके से बर्खास्तगी के मामले में, बकाया वेतन के पूर्ण भुगतान के

सिद्धांत निर्धारित किए। सिद्धांतों के प्रासंगिक भाग के रूप में पैरा संख्या 38.5 में वर्णन, इस प्रकार है:

"38.5 ऐसे मामले जिनमें सक्षम न्यायालय या अधिकरण को पता चलता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को पीड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय या अधिकरण के लिए पूरा बकाया वेतन भुगतान का निर्देश देना पूरी तरह उचित है। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय आदि द्वारा पारित पुरस्कार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि कर्मचारी के अधिकार पर एक अलग राय बनाने की संभावना है। /कामगार पूरा पाने के लिए पिछला वेतन या उसका भुगतान करने का नियोक्ता का दायित्व। न्यायालयों को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि गलत/अवैध सेवा समाप्ति के मामलों में, गलत करने वाला नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी/कर्मचारी है और नियोक्ता को उसके गलत कार्यों के लिए प्रीमियम देने का कोई औचित्य नहीं है। कर्मचारी/कर्मचारी को पूरी बकाया मजदूरी के रूप में उसका बकाया भुगतान करने का बोझ।"

जयंतीभाई रावजीभाई पटेल बनाम नगर परिषद, नरखेड़ [(2019) 17 एससीसी 184], के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दीपाली गुंडू सुरवासे (सुप्रा.) के मामले में बताए गए सिद्धांतों को दोहराया और उनका पालन किया।

इस प्रकार, संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय पाता है कि अपीलार्थी-वादी पूर्ण वेतन सहित सभी परिणामी लाभों के साथ अपनी बहाली का पात्र है, जिससे उसे सेवा में निरंतरता मिलती रहे।

32. परिणामस्वरूप, तत्काल प्रथम अपील की अनुमति दी जाती है। आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री दिनांक 11.05.2011 को निरस्त कर निरस्त किया जाता है। अपीलार्थी-वादी द्वारा दायर सिविल वाद का निर्णय सुनाया जाता है और सेवा से उसका बर्खास्तगी आदेश दिनांक 14.07.2009 और अपीलीय प्राधिकरण का आदेश दिनांक 12.11.2009 को रद्द कर दिया जाता है। अपीलार्थी को सेवा की निरंतरता में माना जाएगा और सभी परिणामी लाभ प्रदान किए जाएंगे। यदि, अपीलार्थी की आधवर्षित आयु हो गई है सेवानिवृत्ति पर, उसे सेवा की निरंतरता मानते हुए पिछला वेतन, सेवानिवृत्ति लाभ, सभी परिणामी लाभों का भुगतान

किया जाएगा, जैसे कि उसे सेवा से कभी नहीं हटाया गया हो। मूल्य के हिसाब से कोई आर्डर नहीं। तदनुसार डिक्री तैयार की जाए।

33. सभी लंबित आवेदन (यदि कोई हों) का भी निपटारा कर दिया गया है।

34. निचली अदालत का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

(सुदेश बंसल), न्यायमूर्ति

Sachin

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल**,** द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।